

विद्यापति की सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना

डॉ० सुनील कुमार*

भारतीय संतो एवं साधकों ने निवृत्ति मार्ग को ही प्रश्रय दिया है। आत्म-प्रदर्शन, आत्म परिचय देने की भावना उनमें नगण्य थी। कालिदास, भवभूति, बाण भट्ट माघ, भारवि जैसे साहित्यकारों ने अपना परिचय नहीं दिया। इतिहास-लेखन उनका धर्म नहीं था। उन सारे साहित्यकारों का जीवन-वृत्त आज तक अंधकार में पड़ा हुआ है। दन्तकथाओं एवं अनुश्रुतियों के आधार पर ही उनके जीवन की खोज हो पायी है। विभिन्न कालों में कालिदास नामधेय पात्रों का उदित हो जाना अस्वाभाविक नहीं था। कवि विद्यापति की परम्परा इससे भिन्न नहीं हैं।¹

अभिनवगुप्त ने "ईश्वर प्रतिज्ञाभिर्मर्शिनी" में विद्यापति का उल्लेख किया है, जो "वैद्यरहस्यपद्धति" के लेखक हैं। ये वंशीधर के पुत्र हैं जिनका काल 1682 मान्य है। कौशिक गोत्रीय विद्यापति भी उल्लिखित हुए हैं जो अनुसंधेय विद्यापति की तरह ही "ओइनवारवंशीय" राजदरबार में आश्रित थे। एक वंश के विभिन्न राजाओं के दरबार में इतिहास विश्रुत कवि के नाम धारण कर लेना उनके अधिकार की बात थी जिससे जनमानस में क्षणिक भ्रान्ति अवश्य पैदा होती थी। जिससे क्षणिक प्रमावापन्न व्यक्तित्व का आभास मिलता था। तांत्रिक विद्यापति का उल्लेख करने वाले श्री दिनेश चन्द्र भट्टाचार्य जी हैं जिनके अनुसार कवि विद्यापति से वे भिन्न पात्र माने गए हैं। निश्चय ही इन सारे नामों के फलस्वरूप कवि विद्यापति पर किसी तरह का विभ्रम उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि, कवि का व्यक्तित्व इतना निखरा हुआ है कि अनुकरणकर्ता से आक्षेप हो जाना सम्भव नहीं था। अन्य विद्यापति नामधेयमात्र मात्र ही हैं जो व्यक्तित्व एवं कृतित्व की दृष्टि से इनकी तुलना में नहीं आ सकते।²

मिथिला के इतिहास में विद्यापति-युग को स्वर्ण-युग कहा गया है। विद्यापति की तिथि के संबंध में अभी भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है, फिर भी साधारणतः विद्वानवर्ग विद्यापति को 1360 से 1490 ई० के बीच रखते हैं। बिहार में मिथिला एक ऐसा क्षेत्र है, जिसकी अपनी सांस्कृतिक और साहित्यिक परम्परा प्राचीन काल से अक्षुण्ण रही है और विदेह जनक के समय जिस संस्कृति का सूत्रपात हुआ था, उसी का पूर्णोत्कर्ष विद्यापति के युग में आकर हुआ। राजशेखर ने मैथिल रीति का उल्लेख किया है। गुप्त अभिलेखों में 'शिथिला: मिथिला:' शब्द

*इतिहास विभाग, यू० टी० डिग्री कॉलेज चमथा, बेगूसराय, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

का व्यवहार हुआ है। 'यशस्तिलक' में तिरहुत सैन्य का वर्णन किया गया है। विद्यापति ने 'पुरुष परीक्षा' में मैथिलों के सम्बन्ध में जो लिखा है, उससे स्पष्ट है कि मैथिल विद्यापति-युग में कुछ विशिष्ट गुणों के द्योतक माने जाते थे। 'पुरुष परीक्षा' के माध्यम से विद्यापति ने कुछ ऐसे मूलभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, जो सर्वतोभावेन व्यावहारिक थे। और वे चाहते थे कि उनके युग में लोग उन सिद्धान्तों का पालन करें। पुरुषार्थ के वे समर्थक थे और उसकी प्राप्ति ही उनके जीवन का लक्ष्य था।³

भारत की यह प्राचीन परिपाटी रही है कि महाकवि अपने नायकों और आश्रयदाताओं को उनकी गरिमा का वर्णन कर अमर बना देते हैं पर स्वयं अपने विषय में मौन ही बने रहते हैं। यह भारतीय संस्कृति का विनय और अहंभाव के अभाव का परिणाम है। विद्यापति भी अपने आश्रयदाताओं की चर्चा कर गये, प्रायः प्रत्येक पुस्तक में उनकी वंशानुक्रमिक प्रशंसा भी लिख गये, पर स्वतः मौन ही रह गये। उनके व्यक्तित्व के परिचय के लिए अन्य साधनों का सहारा लेना पड़ता है, जो अल्पमात्रा में हैं और कभी-कभी लोक की अनुश्रुति पर यहाँ भी निर्भर करना पड़ता है। यहाँ भी उन्हीं स्रोतों से और अप्रत्यक्ष अन्तःसाक्ष्य से प्राप्त विद्यापति के व्यक्तित्व की कुछ झँकी दी जाती है।⁴

विद्यापति के आनुवंशिक व्यक्तित्व के निर्माण में उनके पूर्वजों का पूरा योग था। विद्यापति का जन्म मध्य मिथिला के विसफी ग्राम के विसइवार ब्राह्मण कुल में हुआ। इस वंश के कई व्यक्ति मिथिला राज्य के मंत्रीपद पर प्रतिष्ठित हुए थे, तथा कई ने अपनी विद्वता एवं प्रतिष्ठा का प्रदर्शन साहित्य के क्षेत्र में किया था।⁵

उनके पूर्वज कर्णाटवंशी राजाओं और तदन्तर ओइनवारवंशी राजाओं के मंत्री और राजपण्डित रहे थे। विद्यापति के प्रपितामह देवादित्य कर्णाटवंशी रामसिंह देव के समय सन्धिविग्रहिक मन्त्री थे। देवादित्य के पुत्र वीरेश्वर ने स्वयं सातो भाइयों को राज्य के सातो अंगों पर बिठाकर सप्तांग राज्य स्थिति की कल्पना कार्यान्वित कर दी थी। उनके पुत्र चण्डेश्वर महाराज हरिसिंहदेव के मंत्री बने। ये सब शास्त्रवित निबन्धकार थे और समृद्धि तथा प्रभुता से मंडित थे। हरिसिंहदेव नेपाल के गिरिप्रान्तों में प्रवेश करते हुए ओइनवारवंशी सिद्ध कामेश्वर को राजपद प्रदान करने गये। तुगलवंशी नरेशों ने भी उन्हें राजा की मान्यता दे दी। 'कीर्तिलता' में इन्हीं के वंशज कीर्तिसिंह की वीरगाथा का चित्रण है। इसी वंश के विषय में साभिमान विद्यापति ने कहा—

ओइणी वंस पसिद्ध जग को तसु करइ न सेव

दुहु एकथ न पाइअइ भूवई अरु भूदेव।।

भूपति और वह भी ब्राह्मण-दोनों का समाहार इससे बढ़कर सेवा का और क्या आश्रय हो सकता था? ओइनवार और विसैवार (विद्यापति सम्बद्ध) दोनों वंशों

के पुरुष कर्णाटवंश के आश्रित मंत्री और राजपंडित थे। अब ओइनवार राजा हो गये और विसैवार उनके आश्रित मंत्री और राजपंडित। दोनों का पुराना घनिष्ठ संबंध बना ही रहा। विद्यापति के प्रपितामह वीरेश्वर के अग्रज वीरेश्वर साध्विग्रहिक थे और उनके अनुज गणेश्वर की दक्षता का उल्लेख किया है। अन्य भाई भी सप्तांग स्थिति के पदाधिकारी थे। धीरेश्वर का पद 'वार्तिकनैबन्धिक' का था। विद्यापति के पितामह जयदत्त और पिता गणपति भी राजपंडित रहे। इस प्रकार विद्वता और शास्त्रनिपुणता को विद्यापति ने आनुवंशिक गुणों के रूप में प्राप्त किया।⁷

विद्यापति के गुरु का नाम महामहोपाध्याय हरि मिश्र को दिया जाता है और उनके सतीर्थ पक्षधर मिश्र कहे जाते हैं। उनकी कृतियों को देखने से यह स्पष्ट है कि उन्होंने संस्कृत वाङ्मय का, विशेषतः स्मृतियों, पुराणों और महाकाव्यों का, बड़े मनोयोग से अध्ययन किया था। 'लिखनावली' के प्रारम्भिक पत्रों से ही उनकी गुरुभक्ति की आस्था स्पष्ट हो जाती है। माता-पिता के प्रति अगाध प्रेम बाद के पत्रों से प्रस्फुटित होता है। 'काव्यप्रकाश विवके' में विद्यापति को सदुपाध्याय कहा गया है। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि काव्यप्रकाश का और उसी प्रकार के अन्य शास्त्रों का उन्होंने अच्छी तरह मनन किया होगा। अतः काव्योद्भव के लिए अपेक्षित प्रतिभा, निपुणता और अभ्यास तीनों गुण उनमें रहे होंगे। इन तीनों के आश्रयसे वे महान् कवि और लेखक बने। उन्हें अपनी कारयित्री प्रतिभा का पूरा बोध था और अपनी भाषा की क्षमता का पूरा भरोसा था।⁸

विद्यापति तत्कालीन प्रचलित तीनों भाषा-संस्कृत, अवहट्ट एवं मैथिली में रचना किए थे।⁹ कविराज विद्यापति ने अपने काल में प्रचलित अवहट्ट भाषा का अवलम्बन करके कीर्तिलता की रचना की। वीररस की प्रधानता, ऐतिहासिकता और अवहट्ट भाषा का आश्रय इस काल की विशेषताएँ थीं जिनका सर्वाधिक पालन विद्यापति की कीर्ति कीर्तिलता में है।¹⁰ इसमें विद्यापति ने दिखाया है कि किस प्रकार कीर्तिसिंह के पिता गणेश्वर को असलान नामक यवन ने छल से मारकर मिथिला पर अपना अधिपत्य कायम किया। कीर्तिसिंह ने अपने भाई वीरसिंह के साथ जौनपुर जाकर वहाँ के सुलतान की सहायता से असलान को परास्त कर मिथिला पर पुनः अपना अधिपत्य स्थापित किया।¹¹

कीर्तिलता की सारणि का अनुसरण करके अवहट्ट भाषा में विद्यापति ने कीर्तिपताका की रचना की। दुर्भाग्य से यह ग्रंथ खण्डित हालत में प्राप्त है। पाण्डुलिपि के मध्य के 9 से 29 तक 21 पृष्ठ अप्राप्त है।¹² कीर्तिपताका में महाराज शिवसिंह का यशोवर्णन है। दोहा एवं छंद में यह ग्रंथ लिख है। कहीं-कहीं संस्कृत में भी श्लोक है, बीच-बीच में गद्य है। प्रारंभ में अर्द्धनारीश्वर चन्द्रचूड़ शिव एवं गणेश की वंदना है। तदुत्तर शिवसिंह के आचरण का वर्णन किया गया है। शृंगार

रस का कतिपय पद्य हैं। सुल्तान के साथ शिवसिंह के युद्ध का विस्तृत वर्णन है। जैसा वर्णन इसमें है वैसा किसी दूसरे वीरगाथा काव्य में नहीं।¹³

विद्यापति ने स्मृति, नीति, धार्मिक तथा साहित्य संबंधी अनेकानेक ग्रंथों की रचना की। विभागासार, गंगावाक्यावली तथा दानवाक्यवली स्मृति विषयक ग्रंथ हैं। भू-परिक्रमा एवं पुरुष परीक्षा नीति संबंधी तो शैव-सर्वस्वार तथा दुर्गा-भक्ति-तरंगिणी, गंगावाक्यावली धार्मिक विषयक एवं लिखनावली साहित्य संबंधी ग्रंथ है।¹⁴

इन सभी के अतिरिक्त अपनी मातृभाषा मैथिली में विद्यापति ने बहुसंख्यक पदों की रचना की।¹⁵ विद्यापति को सबसे अधिक प्रसिद्धि 'पदावलि' से मिली। पदावलि विद्यापति की संपूर्ण जीवन की साधना है। इसमें विद्यापति ने भक्ति एवं शृंगार के बीच अद्भूत समन्वय स्थापित किया है।¹⁶ दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि 'पदावलि' विद्यापति की कालजयी रचना है, जो उनको विश्वव्यापी प्रसिद्धि दिलायी। काव्य शास्त्र एवं रसशास्त्र की दृष्टि से भी पदावलि एक विश्वकोष है।¹⁷

प्रस्तुत शोध आलेख में पदावलि के एक पद की चर्चा अपेक्षित है।¹⁸

भोहँ काम कमान करे,
लोचन तिस तीर।
जवने कान कसि मारति रे,
के सहत सरीर।।
कजोनेक कर भे कलावति रे,
के सिञ्जल पयाग।।
सामर धमिल सभरल रे,
दए सीदुँर रेह।।
मेदाहि सुरधनु ऊगल रे,
की बिनु सेरँ जेह।।
एकहि लताँ तीनि फल रे,
तीनीओं अमोल,
कोरि अछलि भेल नारंगी रे,
अवे सिरिफल जोर।।

शृंगार के विभिन्न पक्षों के विवेचन और विश्लेषण के परिपेक्ष्य में पदावलि में प्रेम का चरमोत्कर्ष ही नहीं मिलता, अपतु इसमें सौंदर्य के विशद चित्र एवं प्रणय की विभिन्न भवनाओं के अद्भूत वर्णन भी है। विद्यापति मानवीय अन्तर्मन के पूर्ण ज्ञाता और प्रेम मर्मज्ञ थे। इन्होंने 'सौन्दर्य उपासक' तथा 'शब्द चितेरा' की अभिधा अर्जित कर राधा-कृष्ण प्रेम लीलात्मक काव्य परंपरा में अपना अद्वितीय

स्थान बनाया। संभोग, श्रृंगार के अन्तर्गत विद्यापति का काव्य शास्त्र, काम-शास्त्र एवं मनोविज्ञान संबंधी ज्ञान 'पदावलि' के माध्यम से प्रस्फुटित हुआ है। अपने इसी दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप इन्होंने प्रणय का चित्रण निःसंकोच रूप में पूर्ण स्वच्छन्ता, सजीवता एवं उल्लास के साथ किया है। वस्तुतः महाकवि विद्यापति के इस प्रयास ने केवल उत्तर भारतवर्ष में ही नहीं, वरन् समस्त भारतवर्ष में अमरत्व प्राप्त किया। विद्यापति-पदावलि की श्रृंगारिकता अपनी रसिकता के कारण युग-युगान्तर तक अजर, अमर, अक्षुण्ण रहेगी।¹⁹

विद्यापति बिहार के ही नहीं, समूचे पूर्वांचल के ऐसे ही सांस्कृतिक नेता हैं, जो किसी भूखण्ड के भगयोदय के बाद ही उत्पन्न होते हैं। असम में शंकरदेव और बंगाल में रवीन्द्रनाथ ठाकुर इसी प्रकार के 'सांस्कृतिक नेता' (कल्चरल हीरो) हो चुके हैं। साहित्य और कला के क्षेत्र में आए सांस्कृतिक नेता का यह लक्षण होता है कि वह अपने समय और समाज के सांस्कृतिक विनिमय तथा सांस्कृतिक समन्वय का सूत्रधार बनता है और इसी कारण वह जनता की दृष्टि में किसी भी राजनेता या शासनाधिकारी से अधिक प्रतिष्ठित होता है। जिन प्रदेशों में सौभाग्य से एक भी ऐसा सांस्कृतिक पुरुष हो जाता है, उनमें स्वभावतः साहित्य और कला के प्रति बहुत आदर का भाव रहता है। बिहार में अनेक महापुरुष हो चुके हैं—एक से बढ़कर एक, जिन पर भारत देश को ही नहीं पूरे विश्व को गौरव प्राप्त है। किन्तु ये सभी महापुरुष लगभग साहित्य और कला के क्षेत्र से सम्बन्ध न रह कर अन्य क्षेत्रों से संबद्ध रहे हैं। अतः बिहार प्रान्त के लिए विद्यापति ही 'कल्चरल हीरो' माने जा सकते हैं जिन्होंने अपनी काव्यकला, कोमल भाषा-शैली और विचारधारा के द्वारा न केवल बिहार को, बल्कि पूरे बंगाल और असम को, यानी समूचे पूर्वांचल को प्रभावित किया। बंगाल में तो विद्यापति का ऐसा प्रवेश हुआ, उनका इतना सम्मान हुआ कि बहुत दिनों तक विद्यापति बंगाल के ही माने जाते रहे। खासकर, बंगाल की वैष्णव-भावना के साथ विद्यापति इस तरह जुड़ गए कि बंगाल की अनेक वैष्णव पदावलियों में विद्यापति के पद अथवा विद्यापति की भंगिता से युक्त प्रक्षिप्त पद मिलते हैं। इस तरह की वैष्णव पदावलियों में क्षणदा, गीत-चिन्तामणि, पदामृत समुद्र, पद कल्पतरु, पदकल्पलतिका, संकीर्तनामृत, पदसमुद्र और कीर्तनानन्द के नाम गिनाए जा सकते हैं।²⁰

विद्यापति कानून, स्मृति, नीति, भूगोल, इतिहास आदि के ज्ञाता और रचयिता थे। उनके सभी ग्रंथों के अध्ययन से ही तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति का पता चलता है। मिथिला और बंगाल-असम के बीच उस समय धनिष्ठ सम्पर्क था और मिथिला विश्वविद्यालय में बाहर से काफी लोग पढ़ने आते थे। स्वयं विद्यापति भी एक प्रमुख शिक्षक थे। विद्यापति अपने जीवनकाल में ही

अत्याधिक ख्याति प्राप्त कर चुके थे। जौनपुर से असम तक उनकी कविता का प्रभाव था और उत्तर में नेपाल भी इससे अछूता नहीं रहा। चूँकि मिथिला उस समय स्वतंत्र हिन्दू-राष्ट्र था और न्याय के प्रधान केन्द्र होने के कारण दूर-दूर के लोग यहाँ न्याय पढ़ने आते थे। लौटने के समय वे लोग विद्यापति और अन्य कवियों के सुमधुर गीत साथ लेते जाते थे। विद्यापति का महत्व मूलरूपेण इस बात में है कि उन्होंने अपनी रचना के द्वारा मिथिला में सामाजिक एकता को दृढ़ किया और जन-भाषा के माध्यम से समस्त मैथिल समाज को एकसूत्र में बाँधा। सुन्दर, स्निग्ध एवं भावुकता से ओत-प्रोत उनके गीत सजीवता के परिचायक हैं।²¹ उनकी रचनाओं में लोक-कल्याण की भावना निहित है। जहाँ 'पुरुष परीक्षा' में पुरुषार्थ और जीवनोपयोगी बातें हैं, वहीं 'कीर्तिलता' और 'लिखनावली' में तत्कालीन सामाजिक चित्रण अंकित है। सामाजिक जीवन के दोनों पक्षों पर (लौकिक और अध्यात्मिक) उन्होंने बराबर बल दिया है।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी विद्यापति का युग बड़ा ही महत्वपूर्ण माना गया है। मिथिला उस समय बिहार का प्रधान शिक्षा केन्द्र था और भारत के विभिन्न क्षेत्रों से जिज्ञासु विद्यार्थी नव्य-न्याय पढ़ने के लिए यहाँ आते थे। पक्षधर मिश्र के शिष्य पंडित रघुनाथ शिरोमणि ने अपने गुरु की आज्ञा से नवद्वीप (नदिया, बंगाल) में नव्य-न्याय का केन्द्र खोला था। न्याय-मीमांसा के क्षेत्र में मिथिला की देन अद्वितीय रही है तथा विद्यापति-युग में भी मिथिला इस दृष्टिकोण से सबसे आगे था। विश्वास देवी के समय में मिथिला में 1400 मीमांसकों की एक बैठक हुई थी। शंकर मिश्र अद्वैत वेदान्त के प्रमुख आलोचक थे और उन्होंने कणाद के सूत्रों पर टीका लिखी थी। विद्या की ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं था, जिस पर यहाँ अध्ययन-अध्यापन न होता रहा हो। साहित्य, विज्ञान, गणित, तर्कशास्त्र, कामशास्त्र, व्याकरण, धर्मशास्त्र आदि विषयों में असंख्य पुस्तकों की रचना यहाँ हुई। यहाँ शब्द-विद्या, शिल्प-स्थान-विद्या, चिकित्सा-विद्या, हेतु-विद्या, अध्यात्म-विद्या, काम-विद्या आदि का अध्ययन-अध्यापन होता था। परिवार नियोजन के कतिपय उपाय ज्योतिरीश्वर ठाकुर के 'पंचसायक' ग्रंथ में मिलते हैं। पुस्तक लिखने और पांडुलिपि तैयार करने की भी प्रथा थी। तालपत्रों पर पुस्तकों की रचना होती थी। विद्यार्थियों का जीवन अनुशासित होता था। विद्वानों का समाज में सर्वश्रेष्ठ सम्मान प्राप्त था। विभिन्न प्रकार के विद्वानों का विवरण 'पुरुष परीक्षा' में मिलता है।²²

विज्ञान की उपेक्षा नहीं होती थी। मिथिला तंत्र का प्रधान केन्द्र था और बहुत सारे तांत्रिक वैज्ञानिक भी थे। समय और काल का अध्ययन भी यहाँ के लोग करते थे और उदयन रचित 'किरणावली' में इसका उल्लेख मिलता है। नैयायिक लोगों ने अणु-परमाणु का भी अध्ययन उपस्थित किया था। अणु की महत्ता के

संबंध में शंकर मिश्र ने लिखा है—‘नित्यं रिमंडलम्—परिमंडलमेव परिमांडल्यम्’। उन्होंने ‘गति’ (गमन) का भी विश्लेषण किया है और साथ ही स्पन्दन, आरोहण, वायु, नाद आदि का भी। विद्यापति ने पुरुष—परीक्षा में वनस्पति शास्त्र और मवेशी विज्ञान—शास्त्र का वर्णन किया है। चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन तो होता ही था। ‘वर्णरत्नाकर’ में निम्नलिखित प्रकार क वैद्यों का उल्लेख है — ‘विष वैद्य’, ‘नर वैद्य’, ‘गज वैद्य’, ‘अश्व वैद्य’ इत्यादि। रेखागणित, ज्योतिष आदि का भी विस्तृत अध्ययन होता था। उस समय मिथिला में मकरन्द—तिथि—तालिका (कलेंडर) का व्यवहार होता था।²³

विद्यापति के युग में मिथिला में बहुत सारे प्रसिद्ध निबन्धकार भी हुए और उन लोगों ने निबन्ध लिखकर मिथिला की सांस्कृति एकता को बल दिया। श्रीदत्त, उपाध्याय, चण्डेश्वर, हरिनाथ उपाध्याय, मदनसिंह देव, रुद्रधर, मिसारू मिश्र, वाचस्पति मिश्र, रामदत्त, पद्मनाथ, विद्यापति, इन्द्रपति, प्रेमनिधि, लक्ष्मीपति, शंकर मिश्र, वर्द्धमान आदि उस युग के प्रमुख निबन्धकार थे। चण्डेश्वर ने अपने ग्रन्थों में ‘वर्ण—धर्म’, आश्रम—धर्म, वर्णाश्रम—धर्म, गुण—धर्म, निमित्त—धर्म, आदि का विस्तृत विश्लेषण किया है। धर्म को उसने चार भागों में बाँटा है—‘स्वरूप’ (परिभाषा), ‘फल’ (परिणाम), ‘प्रमाण’ (स्रोत) और ‘निमित्त’। चण्डेश्वर बहुत हद तक लक्ष्मीधर के ऋणी थे और साथ ही ‘विष्णुधर्मोत्तर पुराण’ के भी। बंगाल के निबन्धकार रघुनन्दन मैथिल निबन्धकारों के ऋणी थे और उन्होंने अपने ग्रन्थों में मैथिल मत का प्रश्रय लिया है, जैसा कि उनके ‘मैथिलास्तु’ शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है। उन्होंने विद्यापति रचित ‘दानवाक्यावली’, ‘गंगावाक्यावली’, ‘दूर्गाभक्तिरंगिणी’ और ‘वर्षकृत्य’ से भी काफी सहायता ली है। रुद्रधर, वाचस्पति और अन्यान्य निबन्धकारों के भी रघुनन्दन ऋणी हैं। इनसे स्पष्ट है कि उस युग में मिथिला—स्कूल की बड़ी प्रधानता थी और बंगाल के सभी निबन्धकार मैथिल निबन्धकारों के मत को महत्व देते थे।

संदर्भ—

1. डॉ० नारायण कुमार—हिंदी गतिकाव्य और विद्यापति, जानकी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1990, पटना, पृ० 103
2. उपर्युक्त, पृ० 103—104
3. डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव (स०)—विद्यापति अनुशीलन एवं मूल्यांकन, खण्ड—1, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, द्वितीय संस्करण, 2011, पटना, पृ० 2
4. उपर्युक्त, पृ० 20
5. डॉ० रामप्रकाश शर्मा—मिथिला का इतिहास, कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, द्वितीय संस्करण, 2002, दरभंगा, पृ० 537—39

6. डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव (स०)—विद्यापति अनुशीलन एवं मूल्यांकन, खण्ड—1, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, द्वितीय संस्करण, 2011, पटना, पृ० 20
7. उपर्युक्त, पृ० 21
8. उपर्युक्त, वही
9. इन्द्रकांत झा—विद्यापति कालीन मिथिला, मैथिली अकादमी, प्रथम संस्करण, 1986, पटना, पृ० 36
10. डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव (स०)—विद्यापति अनुशीलन एवं मूल्यांकन, खण्ड—1, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, द्वितीय संस्करण, 2011, पटना, पृ० 25
11. डॉ० नारायण कुमार झा—आइनवारकालीन मिथिला, शेखर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2008, पटना, पृ० 135—136
12. डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव (स०)—विद्यापति अनुशीलन एवं मूल्यांकन, खण्ड—1, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, द्वितीय संस्करण, 2011, पटना, पृ० 34
13. डॉ० कृष्ण कुमार झा—मिथिला का सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन, कोमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2004, पटना, पृ० 166
14. डॉ० नारायण कुमार झा—आइनवारकालीन मिथिला, शेखर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2008, पटना, पृ० 136
15. डॉ० रामप्रकाश शर्मा—मिथिला का इतिहास, कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, द्वितीय संस्करण, 2002, दरभंगा, पृ० 540
16. डॉ० नारायण कुमार झा—आइनवारकालीन मिथिला, शेखर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2008, पटना, पृ० 136
17. सुरेश्वर झा (स०)—मैथिली काव्य विकास साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण, 1998, नई दिल्ली, पृ० 195
18. डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव (स०)—विद्यापति अनुशीलन एवं मूल्यांकन, खण्ड—2, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, द्वितीय संस्करण, 1985, पटना, पृ० 74
19. डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव (स०)—विद्यापति अनुशीलन एवं मूल्यांकन, खण्ड—1, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, द्वितीय संस्करण, 2011, पटना, पृ० 198—99
20. गोपालजी झा—विद्यापति काव्य में दार्शनिकता, जानकी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2000, पटना, पृ० 2
21. निरंजन चक्रवती—विद्यापति समीक्षा, प्रथम संस्करण, 1970, पृ० 94
22. डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव (स०)—विद्यापति अनुशीलन एवं मूल्यांकन, खण्ड—1, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, द्वितीय संस्करण, 2011, पटना, पृ० 11—12
23. उपर्युक्त, पृ० 12

